IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय ज्ञानपरम्परा में पातन्जल योगसाधना

डॉ.विकाशिनी गुमानसिंह,
सहायकाचार्या (सांख्ययोग विद्याशाखा)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
श्री सदाशिव परिसर, पुरी, उडिशा

संकेत शब्द- यौगिक साधना, अष्टांगयोग, योगाधिकारी, क्रियायोग, समाधि, अभ्यास- वैराग्य, कैवल्य इत्यादि ।

सारांश- साधना मार्ग व्यक्ति की पात्रता योग्यता एवं उसमें श्रद्धा विश्वास के अनुरूप उसके लिए उचित अथवा श्रेयस्कर हो सकते हैं किन्तु यदि सर्व सुलभ और सभी मार्गों का सार तत्त्व समाहित किये हुए साधना मार्ग पर विचार किया जाय तो निःसन्देह वह मार्ग महर्षि पतंजलि प्रणीत साधना मार्ग ही है। आचार्य का योगदर्शन वास्तव में दर्शन से ज्यादा योग का प्रयोग है, क्योकि दार्शनिक पक्ष तो सांख्य में स्पष्ट ही है। इनका उद्देश्य ही है कैवल्य का व्यावहारिक उपाय (साधना मार्ग) बताना। इसे ही यहाँ व्यक्त किया जा रहा है-

महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में- भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की योग्यता पात्रता के अनुरूप अनेक साधना मार्ग (उपाय) बताये हैं, जिन्हे सामान्यतया निम्न तीन भागों में बांटा जा सकता है- उच्चकोटि की साधना (अभ्यास एवं वैराग्य), मध्यम कोटि की साधना (क्रिया योग), निम्न कोटि की साधना (अष्टांग योग) ये तीन तरह के साधन तीन प्रकार के अधिकारियों- पात्रता रखने वाले साधकों या योग्य जनों के लिए हैं। उत्तम अधिकारी के लिए उत्तम साधन, मध्य के लिए मध्यम और अधम के लिए अधम साधन महर्षि ने योग सूत्र में बताया है। जैसे- उत्तम अधिकारी के लिए अभ्यास, वैराग्य और ईश्वर प्रणिधान आदि साधन बतलाये हैं।

‘‘**अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।**’’[1]

‘‘**ईश्वरप्रणिधानाद्वा**’’।[2]

यह उच्चकोटि की साधना कही जा सकती है जो उच्च कोटि के उत्तम साधकों के लिए है। मध्यम कोटि के साधकों के लिए क्रिया योग बताया है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है-

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।[3]

निम्न कोटि के अधम अधिकारियों के लिए महर्षि पतंजलि ने 'अष्टांग योग' की शिक्षा दी है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- ये आठ साधन अष्टांग योग कहलाते हैं-

यमनियमासनप्ाणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।[4]

इनके अनुष्ठान से चित्त की अशुद्धता दूर होकर धीरे धीरे ज्ञान का विकास होता रहता है और अन्त में विवेक ख्याति की प्राप्ति हो जाती है।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।[5]

प्रस्तुत लेख में महर्षि पतंजलि के द्वारा प्रदर्शित त्रिविध योग साधना के स्वरूप को उपस्थापित कियागया है।

अष्टांग योग साधनाः-

चित्त की शुद्धि एवं चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए महर्षि पतंजलि ने प्राथमिक साधकों को अष्टांग मार्ग का उपदेश दिया है जिन्हें 'अष्टांग योग' कहते हैं। इस योग मार्ग के आठ अंग हैं- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इनमें से प्रथम पाँच योग के वहिरंग साधन कहलाते हैं एवं अंतिम तीन (धारणा, ध्यान, और समाधि) अन्तरंग साधन। इनमें से प्रथम अंग अगले अंग यानी पहली सीढ़ी दूसरी सीढ़ी पर पहुँचने की योग्यता प्रदान करती है और साधकक्रमबद्ध रूप से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर साधना पथ पर अग्रसर होता जाता है। वहिरंग साधना के अभ्यास से साधक अंतरंग साधना करने योग्य हो पाता है। अष्टांग योग के प्रथम दो अंग (यम और नियम) नैतिक साधना पर बल देते हैं। आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का उद्देश्य शरीर को स्वस्थ, प्राणवान बनाना, स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर का शोधन तथा चित्त को वाहय विषयों से हटाना है ताकि वह ध्यान और समाधि के योग्य हो सके। धारणा ध्यान और समाधि में एकाग्रता का अभ्यास क्रमशः स्थूल से सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म होते हुए अपनी पराकाष्ठा में पहुँचता है।

महर्षि पतंजलि के ही शब्दो में-

"यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि।"[6]

योगांङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।[7]

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः।[8]

तद्भावात् तंयोगाभावो हानं तद् दृशेः कैवल्यम्।[9]

अष्टांग योग साधना की समझ के लिए उसके सभी अंगो को जानना आवश्यक है, जो निम्न हैं-

1 यमः- यह अष्टांग योग का पहला अंग है। यम शब्द की व्युत्पत्ति यम उपरमें धातु से हुई है जिसका अर्थ उपरम् अर्थात् अभाव या निवृत्ति है। 'यमयन्ति निवर्तयन्तीति यमाः' यानि कि जो अवांछनीय कार्यों से निवृत्त कराते हैं, यम हैं। यम का अर्थ होता है- नियन्त्रण या संयम। मन, वचन और कर्म का संयम ही यम है। महर्षि पतंजलि का कथन है कि यम सार्वभौम महाव्रत हैं-

(क) अहिंसासत्यास्तेयब्रहमचर्यापरिग्रहा यमाः।[10]

(ख) एते जातिदेशकालसमयानवच्द्दिन्नाः सार्वभौमा महाब्रतम्।[11]

अहिंसाः- मन, वचन और कर्म (शरीर) से किसी भी प्राणी की कभी भी किसी भी समय हिंसा न करना, उसे दुख न देना अहिंसा है। योग दर्शन में हिंसा को सभी बुराइयों का जड़ माना गया है। रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने भी हिंसा को सबसे बड़ा पाप माना है- **परहित सरिस धरम नहीं भाई। पर पीड़ा सम नहीं अघमाई।।**[12]

सत्यः- सत्य का अर्थ है मिथ्या वचन व छल कपट युक्त व्यवहार का परित्याग। जैसा देखा सुना व अनुभव किया वैसा ही बोलना एवं मधुर हितकर वाणी बोलना सत्य है।

अस्तेयः- दूसरे के धन को न चुराना, चोर वृत्ति का परित्याग अस्तेय कहलाता है।

ब्रह्मचर्यः- ब्रह्मचर्य का अर्थ है विषय वासना की ओर ले जाने वाली प्रवृत्ति का त्याग करना। मन, वचन और शरीर से मैथुन का परित्याग करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। भोजवृत्ति के अनुसार उपस्थ इन्द्रिय का संयम ही ब्रह्मचर्य है- ब्रह्मचर्यम् उपस्थ संयमः।

दक्ष संहिता के अनुसार मैथुन आठ प्रकार के होते हैं-

'स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च।।

एतन्मैथुनमष्टांग प्रभवन्ति मनीषिणः।

विपरीतं ब्रह्मचर्य मेतदेवाष्टलक्षणम्।।[13]

अपरिग्रहः- आवश्यकता से अधिक धन सम्पत्ति आदि भोग सामग्री का संचय (परिग्रह) न करना ही अपरिग्रह है। योग साधना के लिए संचय प्रवृत्ति का त्याग आवश्यक है।

नियमः- अष्टांग योग का दूसरा अंग नियम है नियम का अभिप्राय आन्तरिक अनुशासन से है। यम जहाँ व्यक्ति के जीवन को सामाजिक एवं बाहय क्रियाओं से सामन्जस्यपूर्ण बनाते हैं, वहीं नियम उसके आन्तरिक जीवन को अनुशासित और सदाचार से पूर्ण करते हैं। त्रिशिख ब्राहमणोपनिषद् में कहा गया है कि- **"अनुरक्तिः परे तत्त्व सततं नियमः स्मृतः।"**[14]

अर्थात् परम तत्त्व में निरन्तर अनुरक्ति ही नियम है। नियम का उद्देश्य मन की शान्ति और पवित्रता प्राप्त कर एकाग्रता के लिए तैयारी करना है। महर्षि पतंजलि के अनुसार नियम भी पाँच हैं-

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।[15]

शौचः- शुचि (पवित्र) शब्द से शौच शब्द बना है। जिसका अर्थ होता है- शुद्धता, पवित्रता, स्वच्छता। अपने को मनसा, वाचा और कर्मणा शुद्ध पवित्र बनाये रखना शौच कहलाता है। इसके दो भेद हैं-

1 बाह्य शौच और 2 आन्तरिक शौच। बाह्य शौचः- यह शारीरिक शुद्धि है। जल मिट्टी आदि से शरीर को शुद्ध रखना वाह्य शौच कहलाता है। आन्तरिक शौचः- यह मानसिक शुद्धि है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अंहकार आदि मनोविकारों को दूर करना आन्तरिक शौच कहलाता है। मनुस्मृति में कहा गया है कि शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन की शुद्धि सत्य से होती है, जीवात्मा की शुद्धि तप और स्वाध्यास से होती है तथा बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है-

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।[16]

महर्षि पतंजलि के अनुसार शौच के पालन से अपने अंगों में वैराग्य तथा दूसरो से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है-

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः।।[17]

संतोषः- समुचित प्रयत्न के बाद जो मिल जाय उसी से संतुष्ट रहना संतोष कहलाता है। हमेशा संतुष्ट रहना तृष्णा से रहित होना तथा अत्यधिक पाने की इच्छा का अभाव ही संतोष है।

सन्तोषस्तुष्टिः।[18]

तृष्णाराहृत्य संतोषं इति[19]

संतोष का अर्थ भाग्य भरोसे बैठ जाना या निकम्मा बनकर पुरुषार्थ छोड़ देना नहीं है बल्कि पुरुषार्थ करते हुए आनन्दित रहना हर घड़ी प्रसन्न रहना, विपरीत परिस्थितियों में भी खिन्न न होना, यह संतोष है। संतोष ही सुख का मूल है, इसके विपरीत असन्तोष या तृष्णा ही दुख का मूल है-

संतोष मूलं ही सुखम्, दुख मूलं हि विपर्ययः।[20]

संतोष परम सुख है- संतोषं परम् सुखम्।

रामचरित मानस में भी कहा गया है-

गोधन गजधन बाजधन और रतन धन खान।

जब आवहि सन्तोष धन, सब धन धुरि समान।।[21]

महर्षि पतंजलि ने सन्तोष का लाभ (फल) बताते हुए कहा है कि संतोष से सर्वोत्तम (निरतिशय) सुख प्राप्त होता है (जो व्यक्ति को समाधि की ओर ले जाता है)।

संतोषात् अनुत्तमसुखलाभः।[22]

तपः- सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, लाभ-हानि, हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करते हुए अपने कर्तव्य का पालन करते रहना तप कहलाता है-

तपो द्वन्द्वसहनम्।[23]

तप के प्रभाव से अशुद्धि का नाश हो जाता है और तव शरीर एवं इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है-

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।[24]

स्वाध्यायः- वेद, उपनिषद, गीता, दर्शन आदि सद्ग्रन्थों एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन, ऊँकार एवं गायत्री जप तथा ज्ञानी पुरुषों के कथनो का अनुशीलन स्वाध्याय कहलाता है।

स्वाध्यायः प्रणवादि पवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राध्ययनं वा।[25]

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः।[26]

ईश्वर प्रणिधानः- ईश्वर की उपासना या भक्ति को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं। इसलिए योग भाष्यकार व्यास जी ने लिखा है कि- अपने समस्त कर्मों को कर्मफल सहित परमगुरु परमेश्वर के निमित्त अर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है-

ईश्वर प्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।[27]

समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्।[28]

आसनः- आसन अष्टांग योग का तीसरा अंग है। महर्षि पतंजलि का कथन है कि स्थिर भाव से सुख पूर्वक बैठने को आसन कहते हैं- **''स्थिर सुखमासनम्''।**[29] मन की एकाग्रता ध्यान हेतु शरीर का संयम भी जरूरी है। यह काम आसन करता है। आसन शरीर को स्वस्थ और निरोग रखने में भी सहायक है। आसन के अनेकों प्रकार हैं- जैसे सुखासन, पद्मासन, वज्रासन आदि। आसन को सिद्ध कर लेने से साधक के शरीर पर सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता-

ततो द्वन्द्वानभिघातः।[30]

प्राणायामः- यह अष्टांग योग का चौथा अंग है। प्राणायाम शब्द प्राण$आयाम से बना है। प्राण का अर्थ है जीवनी शक्ति और आयाम का अर्थ है विस्तार करना, घारणा करना, नियन्त्रित करना या रोकना। इस प्रकार प्राणवायु पर संयम करना तथा अपने अन्दर की प्राण शक्ति-जीवनी शक्ति का विस्तार करना ही प्राणायाम है- **प्राणानां आयामः प्राणायामः**। महर्षि पतंजलि ने श्वास प्रश्वास की गति को रोकने को प्राणायाम कहा है।

'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोः गति विच्द्देदः प्राणायामः।[31]

प्राणायाम क्रिया के तीन अंग हैं- पूरक, कुम्भक, और रेचक। इसके अन्तर्गत क्रमशः नियमपूर्वक अपने भीतर श्वास खीचना, रोकना और छोड़ना आदि क्रियाएं आती हैं। प्राणायाम से जहाँ अनेक प्रकार के रोगो से मुक्ति मिलती है, वहीं मन की शुद्धि भी होती है मन पर नियन्त्रण होने लगता है। उस पर पड़ा आवरण क्षीण हो जाता और मन के अन्दर धारणा की विशेष योग्यता आ जाती है-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।

धारणासु च योग्यता मनसः।।[32]

प्रत्याहारः- यह अष्टांग योग का पाँचवा अंग है। प्रत्याहार शब्द प्रति$आहार से बना है। प्रति का अर्थ है पीछे और आहार का अर्थ है लेना या ग्रहण करना। इस प्रकार प्रत्याहार का अर्थ है विमुख होना पीछे हटना, दूसरी दिशा में जाना। यौगिक दृष्टिकोण से इन्द्रियों का अपने वाहय विषयों से हटकर अन्दर की ओर जाना यानी वहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होना प्रत्याहार है। योग दर्शन में इन्द्रियों का अपने विषयों को त्याग करके चित्त स्वरूप के अनुकूल होना प्रत्याहार कहलाता है-

पुनः चित्तस्य अन्तर्मुखी भावः प्रत्याहारः।[33]

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकारः इव इन्द्रियाणाम् प्रत्याहारः।[34]

प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है-

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।[35]

धारणाः- किसी देश या स्थान विशेष पर चित्त को स्थिर करना (बाँधना) धारण कहलाती है-

देशबन्धश्चित्तश्य धारणा।[36]

धारणा में चित्त को किसी एक वस्तु पर केन्द्रित करना होता है। यह वस्तु या स्थान वाहय या आन्तरिक दोनो हो सकता है। व्यास भाष्य में कहा गया है कि नाभि चक्र, हदय कमल, मूर्ध्य ज्योति, नासिकाग्र, जिहवा आदि देशों या

स्थानों में अथवा किसी अन्य बाहय विषय में वृत्ति मात्र से चित्त को एकाग्र करने का नाम धारणा है। वेदान्त सार में अद्‌वितीय चेतन सत्ता (ब्रह्म) में मन को लगाना ही धारणा कहलाता है-

अद्‌वितीयवस्तुन्यन्तरिन्द्रिय धारणां धारणाः।।[37]

महर्षि पतंजलि ने धारणा ध्यान और समाधि को संयुक्त रूप में संयम भी कहा है-

त्रयमेकत्र संयमः।[38]

ध्यानः- यह धारणा की अगली अवस्था है धारणा परिपक्व बन जाने पर ध्यान के रूप में परिणत हो जाती है। धारणा में मन किसी एक स्थान पर एकाग्र होता है और जब यही एकाग्रता इतनी दृढ़ हो जाती है कि उसमें ज्ञानात्मक चित्त वृत्ति का एक अविच्छिन्न प्रवाह बहने लगता है, तब उसे ध्यान कहते है-

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।[39]

मैत्री उपनिषद के अनुसार मन का विषयों से रहित हो जाना ही ध्यान है-

ध्यानं निर्विषयं मनः।[40]

मनुस्मृति में कहा गया है कि प्राणायाम से शरीर के दोष, रोग आदि दूर होते हैं। प्रत्याहार से बाह्य विषयों की ओर प्रवृत्ति समाप्त होती है। अर्थात् विषयों के प्रति अनासक्ति का भाव आता है। धारणा से मनुष्य के पाप, कुसंस्कार और कुविचार आदि नष्ट होते है। तथा ध्यान के अभ्यास से मनुष्य के अन्दर विद्‌यमान विकृत करने वाले विकार, जैसे- काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्‌वेष, अहंकार आदि नष्ट होते हैं-

प्राणायामैर्दहेद् दोषान्, धारणाभिश्च किल्विषम्।

प्रत्याहारेण संसर्गान, ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।।[41]

समाधिः- समाधि योग की अंतिम सीढ़ी है। यह ध्यान की उच्च अवस्था है। ध्यान करते-करते जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाता है, तब वह ध्यान ही समाधि हो जाता है-

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।[42]

धारणा ध्यान और समाधि में अन्तर यह है कि धारणा में मन की पूर्ण एकाग्रता नहीं होती। ध्यान में पूर्ण एकाग्रता हो जाती किन्तु ध्याता, ध्येय और ध्यान की प्रतीति अलग-अलग बनी रहती है जबकि समाधि में केवल ध्येय मात्र की प्रतीति होती है। ध्याता और ध्यान ध्येय में लीन हो जाते हैं। समाधि की अवस्था में चित्त की वृत्तियाँ निरूद्‌ध हो जाती हैं और समाधि की निर्बीज अवस्था में द्रष्टा पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है।

क्रिया योग साधनाः-

महर्षि पतंजलि ने समाधि की अवस्था तक पहुँचने का दूसरा मार्ग 'क्रिया-योग' को बताया है उनके अनुसार तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ही क्रिया योग है-

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।।[43]

यद्‌यपि तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान- ये तीनो ही अष्टांग योग के अन्तर्गत नियम के अंग हैं। जिनका चित्त दूषित है, जो निम्न स्तर के साधक हैं, उन्हे अहिंसा सत्य आदि यमों का अभ्यास भी करना है और इन तप स्वाध्याय आदि नियमों का भी। किन्तु जो मध्यम श्रेणी के साधक हैं जो हिंसा, स्तेय, परिग्रह आदि से मुक्त हैं, जिनका व्यवहार

आचरण शुद्ध है, ऐसे साधकों के लिए महर्षि ने तीन ही उपाय बताये हैं- तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान। और इन तीनों के समन्वित स्वरूप को क्रिया योग का नाम दिया है।

तपः- योग की सिद्धि के लिए तप की नितान्त आवश्यकता है। "ना तपस्विनो योगः सिद्धयति"।

तप के साथ साथ स्वाध्याय भी आवश्यक है। प्रणव आदि का जप एवं मोक्ष शास्त्ों का अध्ययन स्वाध्याय है। तप और स्वाध्याय से व्यक्ति को प्रायः अहंकार होने लगता है। इसीलिए अहंकार उत्पन्न न हो, अहंकार के नाश के लिए अपने कर्मा को ईश्वर को समर्पित करते जाना भी योग साधक के लिए जरूरी है, जिसे ईश्वर प्राणिधान कहा गया है। ईश्वर की शरणागति, ईश्वर की भक्ति ही ईश्वर प्रणिधान है। व्यास भाष्य के अनुसार-

स्वाध्यायः प्रणवादि पवित्राणाम् जपः मोक्षशास्त्रध्ययनम् ईश्वर प्रणिधानम् सर्व क्रियाणाम् परमगुरावर्पणं तत्फलं सन्यासो वा।[44]

क्रिया योग के प्रभाव से समाधि के प्रति भावना उत्पन्न होती है और अविद्या आदि क्लेश क्षीण हो जाते हैं-

"समाधि भावनार्थः क्लेशतनू करणार्थश्च"।[45]

जिससे क्लेश रहित योगी विवेकख्याति से ईश्वर साक्षात्कार की ओर उन्मुख होता हुआ समाधि को प्राप्त कर लेता है।

अभ्यास एवं वैराग्य साधना -

समाधि की अवस्था तक पहुँचने का उच्च स्तरीय साधन अभ्यास और वैराग्य है जो उच्च कोटि के समाहित चित्त वाले साधकों के लिए है। पूर्व जन्मों के साधना एवं संस्कार से जिन साधकों का चित्त शुद्ध हो चुका है, जो हिंसा, असत्य, चौर्य वृत्ति, संचय आदि के कुसंस्कारों से मुक्त हैं, जिनके अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, दम्भ अहंकार आदि मनोविकार क्षीण हो चुके हैं- ऐसे साधक तो स्वभाव से ही यम नियम पालन करने वाले होते ही हैं। इसीलिए महर्षि पतंजलि कहते हैं कि समाहित चित्त वाले उच्च स्तरीय साधकों के चित्त की वृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य की साधना से ही हो जाता है-

अभ्यास-वैराग्याभ्यां तन्निरोधः।[46]

श्रीमद्भगद्गीता में भी श्री कृष्ण ने कुन्ती पुत्र कौन्तेय अर्थात् अर्जुन को मन को वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य की शिक्षा दी है-

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[47]

अभ्यासः- अभ्यास का अर्थ है प्रयास या प्रयत्न करते रहना। चित्त की शुद्धता और स्थिरता योग साधना की अनिवार्य आवश्यकता है अतः इसके लिए निरन्तर प्रयत्न करना ही अभ्यास है-

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।[48]

"स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः"।[49]

जितनी अधिक लगन और निष्ठा के साथ साधना की जायेगी सफलता भी उतनी ही शीघ्र मिलेगी-

तीव्रसंवेगानाम् आसन्नः।[50]

वैराग्यः- लौकिक एवं परिलौकिक सभी प्रकार के भोगों के प्रति आसक्ति रहित हो जाना ही वैराग्य कहलाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार-

'' दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्।[51]

वैराग्य के भेदः- योग दर्शन में वैराग्य के दो प्रकार बताये गये हैं- अपर वैराग्य और पर वैराग्य

अपर वैराग्यः- भोग विषयों के प्रति तृष्णा रहित हो जाना अपर वैराग्य कहा जाता है। इससे बुद्धि में विषयों के प्रति अनासक्ति भाव का जागरण होता है। विषय दो प्रकार के होते हैं और 1. दृष्ट 2. श्रुत या आनुश्रविक। दृष्ट विषय वे हैं जिनका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है जैसे धन, स्त्री, पुत्र, भोग सामग्री ऐश्वर्य इत्यादि। आनुश्रविक विषय वे हैं जिनका प्रत्यक्ष अनुभव तो नही होता किन्तु इनको धर्म शास्त्रों आदि में सुना जाता है जैसे स्वर्ग, वैकुण्ठ, परलोक इत्यादि। इन दोनो प्रकार के विषयों से सर्वथा तृष्णा रहित विरक्त हो जाना, इन्हे पाने की लेश मात्र भी इच्छा मन में न रह जाना (आसक्ति रहित हो जाना) यह वशीकार नामक अपर वैराग्य है। इस वैराग्य से सम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है।

परवैराग्यः- अपर वैराग्य की दृढ़ अवस्था परवैराग्य है। अपरवैराग्य के परिपक्व होने पर साधक को विवेक ख्याति की प्राप्ति होती है। चित्त की अत्यन्त निर्मलता में यह विवेक ख्याति भी चित्त की ही एक सात्विक वृत्ति और सत्वगुण का परिणाम प्रतीत होने लगती है। फिर साधक के इससे भी वैराग्य हो जाता है। साधक में प्रकृत्ति के गुणों एवं उसके कार्यो मे किसी प्रकार की किंचित मात्र भी तृष्णा नहीं रहती वह सर्वथा आप्तकाम-निष्काम हो जाता है। ऐसी सर्वथा राग रहित वैराग्य अवस्था को ही परवैराग्य कहते हैं-

''तत्परं पुरुषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्।''[52]

पर वैराग्य से ही असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि की सिद्धि होती है। पर वैराग्य ही ज्ञान की पराकाष्ठा है- लगातार (निरन्तर)पूरे **''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम''।**[53]

इसी से ही कैवल्य या मोक्ष की प्राप्ति होती हे-

एतस्यैव नान्तरीयकं कैवल्यम्।[54]

इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य की साधना के द्वारा उत्तम कोटि के साधक कैवल्य की प्राप्ति कर सकते हैं। वैराग्य ज्ञान रूप है तो अभ्यास प्रयत्न रूप। वैराग्य से चित्त की बाह्य वृत्तियाँ निरूद्ध हो जाती हैं और अभ्यास से आन्तरिक वृत्तियाँ। इस प्रकार इन दोनों की साधना से सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का निरोध होकर आत्म स्वरूप की प्राप्ति 'कैवल्य' हो जाता है।

पादटिप्पणी –

1. योग सूत्र 1/12)	15.योग सूत्र 2/32)	29.योग सूत्र 2/46	43. योग सूत्र 2/1
2. योग सूत्र 1/23	16.मनु॰ 5.109	30.योग सूत्र 2/48	44.योगसूत्र2/1व्यास भाष्य
3. योग सूत्र 2/1	17.योग सूत्र 2/40	31.योगसूत्र2/ 49	45. योग सूत्र 2/2
4. योग सूत्र 2/29	18.भोजवृत्ति 2.32	32.योग सूत्र 2/52	46. योग सूत्र 1/12
5. योग सूत्र 2/28	19.योग रहस्य	33.मनु॰ 6.72	47. गीता 6/35
6. योग सूत्र 2/29	20.मनुस्मृति 4/42	34.योग सूत्र 2/54	48. योग सूत्र1/13)
7. योग सूत्र 2/28	21.रामचरित मानस	35.योग सूत्र 2/55	49. योग सूत्र1/14)
8. योग सूत्र 2/26	22.योग सूत्र 2/42	36.योग सूत्र 3/1	50. योग सूत्र 1/21
9. योग सूत्र 2/25	23.व्यास भाष्य 2/32	37. वेदान्त सार, 205	51. योग सूत्र 1/15
10. योग सूत्र 2/30	24.योग सूत्र 2/ 43	38. योग सूत्र 3/4)	52. योग सूत्र 1/16
11. योग सूत्र 2/31	25.व्यास भाष्य 2/1	39. योग सूत्र 3/2	53.व्यास भाष्य 1/16
12. रामचरित मानस	26.योग सूत्र 2/44	40. मैत्री उपनिषद	54.व्यास भाष्य 1/16
13. दक्ष स्मृति	27.व्यास भाष्य 2/32	41. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्	
14. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद्	28.योग सूत्र 2/45	42. योग सूत्र 3/3	

सन्दर्भ सूची

1 गोयन्दका, हरिकृष्णदास- पातंजल योग दर्शन प्रकाशन गीता प्रेस गोरखपुर।

2 आरण्य, श्री मत स्वामी हरिहारानन्द- पातंजल योग दर्शन, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली।

3 सरस्वती स्वामी विज्ञानान्द- योग विज्ञान योग निकेतन ट्रस्ट ऋषिकेश ।

4 पोद्दार श्री हनुमान प्रसाद सम्पादक कल्याण योगांक- गीता प्रेस गोरखपुर

5 कल्याण साधना अंक- गीता